IJIRSET
International Journal of Innovative Research in
SCIENCE | ENGINEERING | TECHNOLOGY

e-ISSN: 2319-8753 | p-ISSN: 2347-6710

INTERNATIONAL JOURNAL OF INNOVATIVE RESEARCH

IN SCIENCE | ENGINEERING | TECHNOLOGY

Volume 11, Issue 10, October 2022

INTERNATIONAL STANDARD SERIAL NUMBER INDIA

Impact Factor: 8.118

International Journal of Innovative Research in Science, Engineering and Technology (IJIRSET)

| e-ISSN: 2319-8753, p-ISSN: 2347-6710| www.ijirset.com | Impact Factor: 8.118|

||Volume 11, Issue 10, October 2022||

| DOI:10.15680/IJIRSET.2022.1110081|

संस्कृत में शतकों की परंपरा का उद्भव और विकास

Dr. Jitendra Singh Chauhan

Principal, Sanskrit Sahitya, S.G.R. Mahavidyalaya Yaduvansh Nagar, Talgram, Kannauj, Uttar Pradesh, India

सार

संस्कृत भाषा में निबद्ध कथाओं का प्रचुर साहित्य है जो सैकड़ों वर्षों से मनोरंजन करता हुआ उपदेश देता आ रहा है। कथासाहित्य से संबद्ध ग्रंथों के आलोचन से स्पष्ट हो जाता है कि संस्कृत साहित्य में तीनों प्रकार की कहानियों के उदाहरण मिलते हैं जो वर्तमान समय में पश्चिमी देशों में (१) फ़ेअरी टेल्स (परियों की कहानियाँ), (२) फ़ेबुल्स (जंतुकथाएँ) तथा (३) डायडेक्टिक टेल्स (उपदेशमयी कहानियाँ) कही जातीं हैं। कथाओं के मूल स्रोत की खोज के लिए वैदिक संहिताओं का अनुशीलन आवश्यक है। ऋग्वेद की मंत्रसंहिता में अनेक रोचक कहानियों की सूचना मिलती है जिनका परिबृहण शौनक ने "बृहद्देवता" में, षड्गुरुशिष्य ने "कात्यायन सर्वानुक्रमणी" की वेदार्थदीपिका में, यास्क ने निरुक्त में, सायण ने अपने वेदभाष्यों में तथा स्याद्विवेद ने "नीति मंजरी" (रचनाकाल 15वीं शती का अंत) में किया है। यहीं से ये कथाएँ पुराणों के माध्यम से होकर जनता के मनोरंजन तथा शिक्षण के निमित्त लौकिक संस्कृत साहित्य में अवतीर्ण हुई। हिन्दुओं के प्राचीन वेद धर्मग्रन्थ वैदिक संस्कृत में लिखे गए हैं। भारतीय उपमहाद्वीप में श्रौत जैसे सख़्त नियमित ध्वनियों वाले मंत्रोच्चारण की हज़ारों वर्षों पुरानी परम्परा के कारण वैदिक संस्कृत के शब्द और उच्चारण इस क्षेत्र में लिखाई आरम्भ होने से बहुत पहले से सुरक्षित हैं। वेदों के अध्ययन से देखा गया है कि वैदिक संस्कृत भी सैंकड़ों वर्षों के दीर्घ काल में बदलती गई। ऋग्वेद की वैदिक संस्कृत, जिसे ऋग्वैदिक संस्कृत कहा जाता है, सब से प्राचीन रूप है। पाणिनि के नियमीकरण के बाद की शास्त्रीय संस्कृत और वैदिक संस्कृत में पर्याप्त अन्तर है। इसलिए वेदों को मूल रूप में पढ़ने के लिए संस्कृत ही सीखना पार्याप्त नहीं बल्कि वैदिक संस्कृत भी सीखनी पड़ती है।

राजनैतिक और सामाजिक चक्रवातों ने देववाणी संस्कृत की सांस्कृतिक की पीयूसधारा कल की कठोरता में सुख रही है जिससे संस्कृत साहित्य के अद्‌भुत रचनाकार मयूरभट्ट की रचनाएं अपेक्षित रही है । मयूर भट्ट सर्प विद्या के ज्ञाता थे ।मयूर भट्ट के माता पिता बचपन में सिधारने के बाद बहन के साथ रहते थे ।अपनी बहन की शादी बाण भट्ट से की थी ।बाण भट्ट की पत्नी और मयूरभट्ट की बहन के शाप के कारण मयूर कुष्टरोग से पीड़ित हो गए थे । मयूर ने अपनी कुष्ट के निवारण के लिए भगवान सूर्य की उपासना के दौरान सूर्य शतक की रचना कर कुष्ट से मुक्ति पाई थी । मयूर भट्ट मंगल काव्य के प्रथम लेखक एवं हर्षवर्धन के सभा के कवि मयूरभट्ट का जन्म औरंगाबाद जिले का दाउदनगर अनुमंडल के मायर का शाकद्वीपीय ब्राह्मण में सप्तम शताब्दी में हुआ है। मयूर भट्ट काशी के पूर्ववर्ती प्रदेश गोरखपुर ज़िले के शाकद्वीपीय ब्राह्मण मयूर भट्ट का वंशज हैं। तान्त्रिक बौद्ध धर्म के अवसान ने बंगाल तथा उड़ीसा के हिन्दू धर्म पर पर्याप्त प्रभाव डाला। बौद्ध त्रिरत्न बुद्ध, धर्म एवं संध से एक नये हिन्दू देवता की कल्पना हुई, जिसका नाम धर्म पड़ा। धर्म ठाकुर की भक्ति दूर-दूर तक फैली। इस नये देवता सम्बन्धी एक महत्त्वपूर्ण साहित्य की उत्पत्ति प्रारम्भिक बांग्ला में हुई। इस सम्प्रदाय से सम्बन्धित 'शून्य पुराण' एवं लाउसेन नामक मैन (बंगाल) के राजा के नाम आता है, जिसने धर्म की पूजा की और जिसके वीरतापूर्ण कार्यों की प्रसिद्धि-गाथा प्रारम्भ हुई। कथाओं के आधार पर 'धर्ममंगल' आदि नामों से बंगला की मंगल काव्य माला का प्रारम्भ से 12वीं शताब्दी से लिखी जाने लगी। मंगल काव्य के सबसे प्रथम लेखक मयूर भट्ट माने जाते हैं। मयूर भट्ट दक्षिण पंचवटी वासी थे। मयूर भट्ट उत्तर प्रदेश के तपोभूमि गोरखपुर में सरयू किनारे स्थित ककरियाकीट में निवासी रहे है । मयूर भट्ट की संतानें प्यासी के मिश्र और मझोली के मिश्र तथा विशेन वंश की उत्पत्ति हुई है। पयासी के मिश्र ब्रह्म वर्ग में मझोली के मिश्र कहलाते हैं। पुष्यभूति द्वारा वर्द्धन वंश की स्थापना के बाद मगध देश का राजा प्रभाकर वर्द्धन भगवान सूर्य के उपासक था । मगध साम्राज्य का राजा प्रभाकर वर्द्धन की पत्नी यशोमति ने राज्यवर्द्धन और हर्षवर्द्धन पुत्र तथा राज्यश्री पुत्री का जन्म दिया था । राज्यवर्द्धन के मृत्यु के बाद 606 ई. में मगध का राजा बनाने के बाद पंजाब ,कान्यकुब्ज ,बंगाल , मिथिला और उड़ीसा पर। विजय प्राप्त किया था ।हर्षवर्द्धन के दरबार में राज कवियों में बाण भट्ट , मयूर भट्ट , मतंग, दिवाकर और मित्र प्रसिद्ध विद्वान थे ।

मयूर भट्ट संस्कृत कवि थे। इनकी सुप्रसिद्ध रचना "सूर्यशतक" है। व्याकरण, कोश तथा अलंकार के विद्वानों में इस ग्रंथ की बड़ी प्रतिष्ठा रही है। मयूर भट्ट महाकवि बाण के साले हैं। एक समय बाण की पत्नी ने मान किया और सारी रात मान किए रही। प्रभात होने को हुआ, चंद्रमा का तेज विशीर्ण होने लगा, दीप की लौ हिलने लगी, किंतु मान न टूटा। अधीर हो बाण न एक श्लोक बनाया और सविनय निवेदन किया। श्लोक के तीन चरण इस प्रकार थे। गतप्राया रात्रि: कृशतनु शशी शीर्यत इव । प्रदीपोऽयं निद्रा

| e-ISSN: 2319-8753, p-ISSN: 2347-6710| www.ijirset.com | Impact Factor: 8.118|

||Volume 11, Issue 10, October 2022||

| DOI:10.15680/IJIRSET.2022.1110081|

वशमुपगतो घूर्णन इव। प्रणामांतो मानस्त्यजसि न तथापि क्रुधमहो ।इतने में वहाँ कवि मयूर भट्ट आ गए थे। उन्होंने इन तीन चरणों को सुना। कवि काव्यानंद में डूब गया। संबंध की मर्यादा भूल गया और जब तक बाण चौथा चरण सोचते स्वयं परोक्ष से बोल उठा--कुंचप्रत्यासत्त्या हृदयमपि ते चंडि कठिनतम्॥ पंक्ति की चोट से बाण और उनकी पत्नी दोनों घायल हो उठे। विशेषत: उनकी पत्नी को अपने रहस्य में इस प्रकार अनधिकार हस्तक्षेप करनेवाले मर्यादाविहीन संबंधी पर बड़ा क्रोध आया। उन्होंने उसे कुष्टी होने का शाप दे दिया। दु:खी कवि मयूर ने भगवान सूर्य की स्तुति में एक अतिशय प्रौढ़ एवं ललित श्लोकशतक की रचना ग्राम मायर में रहकर "सूर्यशतक" की रचना की है । मयूर की रोग मुक्ति वाली घटना को आचार्य मम्मट ने काव्यप्रकाश में किया है--"आदित्यादेर्मयूरादीनामिवानर्थ निवारणम्" (प्रथम उल्लास)। क्रुद्ध हो मयूर ने बाण को प्रतिशाप दिया, जिससे मुक्ति के लिये बाण ने भगवती दुर्गा की स्तुति में "चंडीशतक" की रचना की। कन्नौज के महाराज हर्षवर्धन की सभा में जिस प्रकार बाण की प्रतिष्ठा थी, उसी प्रकार मयूर की स्थिति हो गयी थी । राजशेखर के शारंगधर अनुसार -अहो प्रभावो वाग्देव्या: यन्मातंगदिवाकरा:। श्रीहर्षस्याभवन् सभ्या: समा: बाणमयूरयो:॥ (शारंगधरपद्धति) । मयूर काशी के पूर्ववर्ती प्रदेश के गोरखपुर जिले के शाकद्वीपीय ब्राह्मण अपने को मयूर भट्ट का वंशज बताते हैं।मयूर भट्ट की श्रंगाररस रचना "मयूराष्टक" है । मयूराष्टक में प्रिय के पास से लौटी प्रेयसी का वर्णन किया गया है। मयूर की सुप्रसिद्ध रचना "सूर्यशतक" है। संस्कृत के सबसे बड़े छंद स्रग्धरा में, लंबे समस्त पदों की गौडी रीति में श्लेष एवं अनुप्रास अलंकार से सुसज्जित अतिशय प्रौढ़ भाषा में पूर्ण वैदग्ध्य के साथ रचे गए इन सौ श्लोकों ने ही काव्यजगत् में मयूर की कवित्वशक्ति की ऐसी धाक जमा दी कि मयूर कविताकामिनी के कर्णपूर बन गए--"कर्णपूरा मयूरक"। सूर्य शतक में कवि का संरभ देव विषयक भक्ति से अधिक अलंकारादि योजना के प्रति है। प्श्लोक के अंत में आशीर्वाद सा दिया गया है। सूर्य के रथ, घोड़े, बिंब आदि के प्रति बड़ी अनूठी कल्पनाएँ की गई हैं। प्रतिभा के साथ कवि की पांडित्य ने सूर्य शतक का महत्व बढ़ा दिया है। औरंगाबाद जिला मुख्यालय से ४२ कि0 मी0 की दूरी पर तथा दाउदनगर अनुमंडल मुख्यालय से १२ कि0 मी0 उतर की ओर अवस्थित मायर में मयूरभट्ट की जन्मभूमि थी । बिहार के सूबेदार शमशेर खां ने मायर में वृहत आयताकार संरचना समतल भूमि से ४'६'' ऊची प्लेटफॉर्म पर ९१.५ वर्ग फीट में बना मकबरा में शमशेर खॉ और उनकी पत्नी की कब्र है शमशेर खॉ का मूल नाम इब्राहीम खॉ था । शमशेर खां शाहाबाद के फौजदार होने के बाद अजिमाबाद के सुबेदार नियुक्त किये गये । शमशेर खॉ ने अपने जीवन काल में मकबरे का निर्माण करवाया के बाद में मृत्यु शमशेर खां की मृत्यु 1712 ई. के पश्चात दफनाया गया था । सातवीं शताब्दी में मायर को 1712 ई. में शमशेर नगर नामकरण किया गया । मयूर भट्ट द्वारा मायर वसया गया । मायर में सूर्योपासना का केंद्र और शाकद्वीपीय ब्राह्मण सूर्योपासक तथा सौर धर्म का प्रमुख स्थल था । मयूर भट्ट द्वारा सूर्य शतक , मयूराष्टक रचना किया गया है ।मयूर भट्ट द्वारा रचित संस्कृत साहित्य के पुस्तक मयूराष्टक को जे .पी. क्केकेन्बॉस और ए . वी . विलियम्स जैक्सन ने कोलंबिया विश्वविद्यालय से प्रकाशित करायी है ।

परिचय

अमरूशतकम् संस्कृत का एक गीतिकाव्य है। इसके रचयिता अमरु या अमरूक हैं। इसका रचना काल नवीं शती माना जाता है। इसमें १०० श्लोक हैं जो अत्यन्त शृंगारपूर्ण एवं मनोरम हैं। नाम से यह शतक है, परंतु इसके पद्यों की संख्या एक सौ से कहीं अधिक है। सूक्तिसंग्रहों में अमरूक के नाम से निर्दिष्ट पद्यों को मिलाकर समस्त श्लोकों की संख्या 163 है।[1,2] इस शतक की प्रसिद्धि का कुछ परिचय इसकी विपुल टीकाओं से लग सकता है। इसके ऊपर दस व्याख्याओं की रचना विभिन्न शताब्दियों में की गई जिनमें अर्जुन वर्मदेव (13वीं सदी का पूर्वार्ध) की 'रसिक संजीवनी' अपनी विद्वत्ता तथा मार्मिकता के लिए प्रसिद्ध है। आनंदवर्धन की सम्मति में अमरूक के मुक्तक इतने सरस तथा भावपूर्ण हैं कि अल्पकाय होने पर भी वे प्रबंधकाव्य की समता रखते हैं। संस्कृत के आलंकारिकों ने ध्वनिकाव्य के उदाहरण के लिए इसके बहुत से पद्य उद्धृत कर इनकी साहित्यिक सुषमा का परिचय दिया है।[3,4]

अमरूक शब्दकवि नहीं हैं, प्रत्युत रसकवि हैं जिनका मुख्य लक्ष्य काव्य में रस का प्रचुर उन्मेष है। अमरूशतक के पद्य शृंगार रस से पूर्ण हैं तथा प्रेम के जीते जागते चटकीले चित्र खींचने में विशेष समर्थ हैं। प्रेमी और प्रेमिकाओं की विभिन्न अवस्थाओं में विद्यमान शृंगारी मनोवृत्तियों का अतीव सूक्ष्म और मनोवैज्ञानिक विश्लेषण इन सरस श्लोकों की प्रधान विशिष्टता है। कहीं पति को परदेश जाने की तैयारी करते देखकर कामिनी की हृदयविह्वलता का चित्र है, तो कहीं पति के आगमन का समाचार सुनकर सुंदरी की हर्ष से छलकती हुई ऑखों और विकसित स्मित का रुचिक चित्रण हैं। [5,6] हिंदी के महाकवि बिहारी तथा पद्माकर ने अमरूक के अनेक पद्यों का सरस अनुवाद प्रस्तुत किया है।

शिव अष्टोत्तर नाम शतक स्तोत्रम्
शिवाष्टोत्तरनामशतकस्तोत्रम् ।

| e-ISSN: 2319-8753, p-ISSN: 2347-6710| www.ijirset.com | Impact Factor: 8.118|

||Volume 11, Issue 10, October 2022||

| DOI:10.15680/IJIRSET.2022.1110081|

देवा ऊचुः ॥

जय शंभो विभो रुद्र स्वयंभो जय शङ्कर ।
जयेश्वर जयेशान जय सर्वज्ञ कामद ॥१॥

नीलकण्ठ जय श्रीद श्रीकण्ठ जय धूर्जटे ।
अष्टमूर्तेऽनन्तमूर्ते महामूर्ते जयानघ ॥२॥

जय पापहरानङ्गनिःसङ्गाभङ्गनाशन ।
जय त्वं त्रिदशाधार त्रिलोकेश त्रिलोचन ॥३॥

जय त्वं त्रिपथाधार त्रिमार्ग त्रिभिरूर्जित ।
त्रिपुरारे त्रिधामूर्ते जयैकत्रिजटात्मक ॥४॥[7,8]

शशिशेखर शूलेश पशुपाल शिवाप्रिय ।
शिवात्मक शिव श्रीद सुहृच्छ्रीशतनो जय ॥५॥

सर्व सर्वेश भूतेश गिरिश त्वं गिरीश्वर ।
जयोग्ररूप भीमेश भव भर्ग जय प्रभो ॥६॥

जय दक्षाध्वरध्वंसिन्नन्धकध्वंसकारक ।
रुण्डमालिन्कपालिंस्त्वं भुजङ्गाजिनभूषण॥७॥

दिगम्बर दिशान्नाथ व्योमकेश चितांपते ।
जयाधार निराधार भस्माधार धराधर ॥८॥

देवदेव महादेव देवतेशादि दैवत ।
वह्निवीर्य जय स्थाणो जयायोनिजसम्भव ॥९॥

भव शर्व महाकाल भस्माङ्ग सर्पभूषण ।
त्र्यम्बक स्थपते वाचांपते भो जगतांपते ॥१०॥

शिपिविष्ट विरूपाक्ष जय लिङ्ग वृषध्वज ।
नीललोहित पिङ्गाक्ष जय खट्वाङ्गमण्डन ॥११॥

कृत्तिवास अहिर्बुध्न्य मृडानीश जटांबुभृत् ।
जगद्भ्रातर्जगन्मातर्जगत्तात जगद्गुरो ॥१२॥

पञ्चवक्त्र महावक्त्र कालवक्त्र गजास्यभृत् ।
दशबाहो महाबाहो महावीर्य महाबल ॥१३॥

अघोरघोरवक्त्र त्वं सद्योजात उमापते ।
सदानन्द महानन्द नन्दमूर्ते जयेश्वर ॥१४।

एवमष्टोत्तरशतं नाम्नां देवकृतं तु ये ।
शंभोर्भक्त्या स्मरन्तीह शृण्वन्ति च पठन्ति च ॥१५॥

न तापास्त्रिविधास्तेषां न शोको न रुजादयः ।
ग्रहगोचरपीडा च तेषां क्वापि न विद्यते ।१६॥

| e-ISSN: 2319-8753, p-ISSN: 2347-6710| www.ijirset.com | Impact Factor: 8.118|

||Volume 11, Issue 10, October 2022||

| DOI:10.15680/IJIRSET.2022.1110081|

श्रीः प्रज्ञाऽऽरोग्यमायुष्यं सौभाग्यं भाग्यमुन्नतिम् ।
विद्या धर्मे मतिः शंभोर्भक्तिस्तेषां न संशयः ॥१७॥

इति श्रीस्कन्दपुराणे सह्याद्रिखण्डे शिवाष्टोत्तरनामशतकस्तोत्रं संपूर्णं॥[9,10]

नीतिशतकम् भर्तृहरि के तीन प्रसिद्ध शतकों जिन्हें कि शतकत्रय कहा जाता है, में से एक है। इसमें नीति सम्बन्धी सौ श्लोक हैं।

नीतिशतक में भर्तृहरि ने अपने अनुभवों के आधार पर तथा लोक व्यवहार पर आश्रित नीति सम्बन्धी श्लोकों का संग्रह किया है। एक ओर तो उसने अज्ञता, लोभ, धन, दुर्जनता, अहंकार आदि की निन्दा की है तो दूसरी ओर विद्या, सज्जनता, उदारता, स्वाभिमान, सहनशीलता, सत्य आदि गुणों की प्रशंसा भी की है। नीतिशतक के श्लोक संस्कृत विद्वानों में ही नहीं अपुति सभी भारतीय भाषाओं में समय-समय पर सूक्ति रूप में उद्धृत किये जाते रहे हैं।[11,12]

संस्कृत विद्वान और टीकाकार भूधेन्द्र ने नीतिशतक को निम्नलिखित भागों में विभक्त किया है, जिन्हें 'पद्धति' कहा गया है-

- मूर्खपद्धति
- विद्वत्पद्धति
- मान-शौर्य-पद्धति
- अर्थपद्धति
- दुर्जनपद्धति
- सुजनपद्धति
- परोपकारपद्धति
- धैर्यपद्धति
- दैवपद्धति
- कर्मपद्धति

निम्नलिखित नीति श्लोक में कवि ने बड़े ही सुन्दर ढंग से धन का महत्त्व प्रतिपादित किया है-

यस्यास्ति वित्तं स नरः कुलीनः स पण्डितः स श्रुतवान् गुणज्ञः ।
स एव वक्ता स च दर्शनीयः सर्वे गुणाः काञ्चनमाश्रयन्ते ॥
(अर्थ - जिसके पास वित्त होता है, वही कुलीन, पण्डित, बहुश्रुत और गुणवान समझा जाता है । वही वक्ता और सुन्दर भी गिना जाता है । सभी गुण स्वर्ण पर आश्रित हैं ।)[13,14]

विचार-विमर्श

शृंगारशतकम् भर्तृहरि के तीन प्रसिद्ध शतकों (शतकत्रय) में से एक है। इसमें शृंगार सम्बन्धी सौ श्लोक हैं। इस रचना में कवि ने रमणियों के सौन्दर्य का तथा उनके पुरुषों को आकृष्ट करने वाले शृंगारमय हाव-भावों का चित्रण किया है। इस शतक में कवि ने स्त्रियों के हाव-भाव, प्रकार, उनका आकृषण व उनके शारीरिक सौष्ठव के बारे में विस्तार से चर्चा की है। कवि का कहना है कि इन्द्र आदि देवताओं को भी अपने कटाक्षों से विचलित करने वाली रमणियों को अबला मानना उचित नहीं है। नारी अपने आकर्षक हाव-भावों से मानव मन को आकृष्ट करके बाँध लेती है - "समस्तभावैः खलु बन्धनं स्त्रियः"। इसके अतिरिक्त भर्तृहरि ने अपने शतक में वसन्त, ग्रीष्म, वर्षा, शरद, हेमन्त व शिशिर ऋतु में स्त्री व स्त्री प्रसंग का अत्यधिक शृंगारिक (कामुक) वर्णन किया है। वास्तव में इस शतक में सांसारिक भोग और वैराग्य इन दो विकल्पों के मध्य अनिश्चय की मनोवृत्ति का चित्रण हुआ है जो वैराग्यशतक में पहुँचकर निश्चयात्मक बन जाती है।
शतक के मंगलाचरण में ही कामदेव को नमस्कार करते हुये भर्तृहरि कहते है-

| e-ISSN: 2319-8753, p-ISSN: 2347-6710| www.ijirset.com | Impact Factor: 8.118|

||Volume 11, Issue 10, October 2022||

| DOI:10.15680/IJIRSET.2022.1110081|

जिसने विष्णु और शिव को मृग के समान नयनों वाली कामिनियों के गृहकार्य करने के लिये सतत् दास बना रखा है, जिसका वर्णन करने में वाणी असमर्थ है ऐसे चरित्रों से विचित्र प्रतीत होने वाले उस भगवान पुष्पायुध (कामदेव) को नमस्कार है। ।।१।।[15,16]

भर्तृहरि बताते हैं कि स्त्री किस प्रकार मनुष्य के संसार बन्धन का कारण है-

मन्द मुस्कराहट से, अन्तकरण के विकाररूप भाव से, लज्जा से, आकस्मिक भय से, तिरछी दृष्टि द्वारा देखने से, बातचीत से, ईर्ष्या के कारण कलह से, लीला विलास से-इस प्रकार सम्पूर्ण भावों से स्त्रियां पुरूषों के संसार-बंधन (?) का कारण हैं। २॥

इसके उपरान्त स्त्रियों के अनेक आयुध (हथियार) गिनाए हैं-

भौंहों के उतार-चढ़ाव आदि की चतुराई, अर्द्ध-उन्मीलित नेत्रों द्वारा कटाक्ष, अत्यधिक स्निग्ध एवं मधुर वाणी, लज्जापूर्ण सुकोमल हास, विलास द्वारा मन्द-मन्द गमन और स्थित होना-ये भाव स्त्रियों के आभूषण भी हैं और आयुध (हथियार) भी हैं। ।।३।।[17,18]

और देखिए भर्तृहरि शृंगारशतक में सबसे उत्तम किसे गिनाते हैं-

इस संसार में नव-यौवनावस्था के समय रसिकों को दर्शनीय वस्तुओं में उत्तम क्या है? मृगनयनी का प्रेम से प्रसन्न मुख। सूंघने योग्य वस्तुओं में क्या उत्तम है? उसके मुख का सुगन्धित पवन। श्रवण योग्य वस्तुओं में उत्तम क्या है? स्त्रियों के मधुर वचन। स्वादिष्ट वस्तुओं में उत्तम क्या है? स्त्रियों के पल्लव के समान अधर का मधुर रस। स्पर्श योग्य वस्तुओं में उत्तम क्या है? उसका कुसुम-सुकुमार कोमल शरीर। ध्यान करने योग्य उत्तम वस्तु क्या है? सदा विलासिनियों का यौवन विलास। ।।७।।

विभिन्न ग्रहों से स्त्रियों की तुलना कितनी आकर्षक है-

स्तन भार के कारण देवगुरू बृहस्पति के समान, कान्तिमान होने के कारण सूर्य के समान, चन्द्रमुखी होने के कारण चन्द्रमा के समान, और मन्द-मन्द चलने वाली अथवा शनैश्चर-स्वरूप चरणों से शोभित होने के कारण सुन्दरियां ग्रह स्वरूप ही हुआ करती है। ।।१६।।

1. वैराग्यशतकम् भर्तृहरि के तीन प्रसिद्ध शतकों (शतकत्रय) में से एक है। इसमें वैराग्य सम्बन्धी सौ श्लोक हैं। शतकत्रय में अन्य दो हैं- शृंगारशतकम् व नीतिशतकम्। तृष्णादूषणम्[19,20]
2. विषयपरित्याग-विडम्बना
3. याच्ञा-दैन्यदूषणम्
4. भोगास्थैर्यवर्णनम्
5. कालमहिमा
6. यति-नृपति-सम्भाषणम्
7. मनःसम्बोधन-नियमनम्
8. नित्यानित्यविचारः
9. शिवार्चनम्
10. अवधूतचर्या

पानी की तरंग और बुलबुले के समान इस चंचल और नश्वर जीवन में प्राणियों को भला सुख कहाँ मिल सकता है। वृद्धावस्था में जीर्ण तथा झुर्रियों वाले अंगों से युक्त होकर मनुष्य को सब कुछ छोड़कर काल के गर्त में जाना पड़ता है [21,22]- भोगों को भोगना समाप्त नहीं होता अपितु व्यक्ति ही समाप्त हो जाता है। कवि ने कितनी गम्भीर बात कही है-

भोगा न भुक्ता वयमेव भुक्ताः तपो न तप्तं वयमेव तप्ताः ।।
कालो न यातो वयमेव याताः तृष्णा न जीर्णा वयमेव जीर्णाः ।।७।।

| e-ISSN: 2319-8753, p-ISSN: 2347-6710| www.ijirset.com | Impact Factor: 8.118|

||Volume 11, Issue 10, October 2022||

| DOI:10.15680/IJIRSET.2022.1110081|

(अर्थ - भोगों को हमने नहीं भोगा, बल्कि भोगों ने ही हमें ही भोग लिया । तपस्या हमने नहीं की, बल्कि हम खुद तप गए । काल (समय) कहीं नहीं गया बल्कि हम स्वयं चले गए । इस सभी के बाद भी मेरी कुछ पाने की तृष्णा नहीं गयी (पुरानी नहीं हुई) बल्कि हम स्वयं जीर्ण हो गए ।।)

इस प्रकार भृतहरि ने यहाँ संसार की आसारता और वैराग्य के महत्त्व का प्रतिपादन किया है। इस शतक में काव्य-प्रतिभा और दार्शनिकता का अद्‌भुत समन्वय किया गया है। इसमें सांसारिक आकर्षणों और भोगों के प्रति उदासीनता के उभरते हुये भावों का चित्रण दिखायी देता है। कवि की तो यही कामना है कि किसी पुण्यमय अरण्य में शिव-शिव का उच्चारण करते हुये उसका समय बीतता जाये।[23,24]

यां चिन्तयामि सततं मयि सा विरक्ता
साप्यन्यं इच्छति जनं स जनोऽन्यसक्तः ।
अस्मत्कृते च परिशुष्यति काचिद् अन्या
धिक् तां च तं च मदनं च इमां च मां च ॥

(अर्थ - मैं जिसका सतत चिन्तन करता हूँ वह (पिंगला) मेरे प्रति उदासीन है। वह (पिंगला) भी जिसको चाहती है वह (अश्वपाल) तो कोई दूसरी ही स्त्री (राजनर्तकी) में आसक्त है। वह (राजनर्तकी) मेरे प्रति स्नेहभाव रखती है। उस (पिंगला) को धिक्कार है ! उस (अश्वपाल) को धिक्कार है ! उस (राजनर्तकी) को धिक्कार है ! उस कामदेव को धिक्कार है और मुझे भी धिक्कार है !)

भोगे रोगभयं कुले च्युतिभयं वित्ते नृपालाद्भयं
मौने दैन्यभयं बले रिपुभयं रूपे जरायाभयम् ।
शास्त्रे वादिभयं गुणे खलभयं काये कृतान्ताद्भयं
सर्वं वस्तु भयान्वितं भुवि नृणां वैराग्यमेवाभयम् ।। (- वैराग्यशतकम् ३१)

(अर्थ - भोग करने पर रोग का भय, उच्च कुल मे जन्म होने पर बदनामी का भय, अधिक धन होने पर राजा का भय, मौन रहने पर दैन्य का भय, बलशाली होने पर शत्रुओं का भय, रूपवान होने पर वृद्धावस्था का भय, शास्त्र मे पारङ्गत होने पर वाद-विवाद का भय, गुणी होने पर दुर्जनों का भय, अच्छा शरीर होने पर यम का भय रहता है। इस संसार मे सभी वस्तुएँ भय उत्पन्न करने वालीं हैं। केवल वैराग्य से ही लोगों को अभय प्राप्त हो सकता है।)

परिणाम

श्री शान्तिनाथ स्तुति-शतकम् (पूजन एवं विधान)

किसी भी व्यक्ति के पास कितना भी धन, सम्पत्ति, वैभव हो लेकिन यदि उसके जीवन में, मन में शान्ति नहीं है तो इस धन-सम्पदा का भी, उसके जीवन में कोई आनन्द नही रहता। शान्ति (peace) वह बहुमूल्य सम्पदा है, जिसको प्रत्येक व्यक्ति अपने जीवन में प्राप्त करना चाहता है। जिनालयों में भी प्रातः काल की बेला में, सर्वप्रथम शान्ति धारा के माध्यम से विश्व शान्ति की मंगल कामना की जाती है। पूजन, विधानआदि का समापन भी शान्ति पाठ से किया जाता है। विघ्न, बाधाओं और अशुभ कर्मों की शान्ति के लिए समय-समय पर शान्ति विधान के आयोजन भी किए जाते हैं। परम पूज्य मुनि श्री प्रणम्य सागर जी महाराज ने श्री 1008 शान्तिनाथ भगवान की भक्ति और स्तुति में एक नई कृति की रचना की है।

परम पूज्य मुनि श्री प्रणम्य सागर जी महाराज द्वारा रचित यह कृति "श्री शान्तिनाथ स्तुति-शतकम् (पूजन एवं विधान)" विलक्षण विशेषताएं लिए हुए, एक अतुलनीय,अनुपम कृति है।

क्या है विशिष्ट इस शान्तिनाथ स्तुति-शतकम् (पूजन एवं विधान) में—

(1) सर्वप्रथम वह सुन्दर संयोग, जब इस कृति की रचना हुई। इस कृति की रचना उस क्षेत्र पर हुई, जहाँ श्री शान्तिनाथ भगवान का जन्म हुआ, गर्भ कल्याणक हुआ, जिस धरा पर भगवान ने तप किया, इस पावन भूमि पर भगवान के समवशरण भी लगे। भगवान की पावन वर्गणायें जहाँ बिखरी पड़ी है, ऐसी पावन धरा पर,जब परम पूज्य मुनि श्री प्रणम्य सागर जी महाराज के प्रथम बार मंगल प्रवेश का समय आया, तो इन शुभ वर्गणाओं का ऐसा अद्‌भुत प्रभाव रहा कि वहाँ प्रवेश से दो-तीन दिन पूर्व ही, पूज्य मुनि श्री की कलम से संस्कृत में भगवान शान्तिनाथ की स्तुति में भक्ति-श्लोकों की रचना प्रारंभ हो गई।

(2) वर्ष 2019, दिसंबर के अन्तिम सप्ताह की भीषण सर्दी का समय, शीत का असहनीय परिषह सहते हुए भी, पूज्य मुनि श्री निरन्तर अपना लेखनकार्य करते रहे। सभी को आश्चर्यचकित करते हुए, पूज्य मुनि श्री की अद्‌भुत लेखनी से संस्कृत के 120 श्लोकों की रचना, हस्तिनापुर प्रवास के लघु समय में ही हो गई।

| e-ISSN: 2319-8753, p-ISSN: 2347-6710| www.ijirset.com | Impact Factor: 8.118|

||Volume 11, Issue 10, October 2022||

| DOI:10.15680/IJIRSET.2022.1110081|

(3) भगवान ने किस तरह, इस पावन धरा पर तप किया होगा, इसका अहसास वहाँ पर पूज्य मुनि श्री के शीत परिषह-जय को देखकर हो रहा था। भगवान के समवशरण और दिव्य ध्वनि से पावन हुए इस क्षेत्र पर पूज्य मुनि श्री के लेखन कार्य को देखकर ऐसा प्रतीत हो रहा था जैसे भगवान की दिव्यध्वनि ही लिपिबद्ध हो रही हो। संस्कृत के 120 श्लोक तो यहाँ पूर्ण हुए ही, इसके साथ-साथ हिंदी के पदों की रचना भी इस पावन धरा पर प्रारम्भ हो गई। [24,25]

ऐसा संयोग बहुत दुर्लभ देखने को मिलता है, पर ऐसा संयोग हुआ और भव्यजनों को शान्तिनाथ स्तुति-शतकम् (पूजन एवं विधान) के रूप में एक अनुपम उपहार पूज्य मुनि श्री की ओर से मिल गया।

(4) पूज्य मुनि श्री ने संस्कृत में अनेक शतकों की रचना की है, उसी श्रंखला में यह, श्री शान्तिनाथ स्तुति-शतकम् , पूज्य मुनि श्री द्वारा रचित एक नया संस्कृत शतक है। इस शतक में 100 नहीं, अपितु 120 संस्कृत श्लोक हैं। इसके साथ ही इसमें हिंदी के भी 120 काव्य पद हैं। इस तरह इस कृति में संस्कृत के साथ, हिंदी शतक भी समाहित है। इसके अतिरिक्त विधान की प्रारम्भिक क्रियाएं और प्रत्येक श्लोक-पद के पश्चातअर्घ्य मंत्र को भी इसमें दिया गया है, जिससे यह पूजन-विधान भी बन गया है। श्रावकों का जब मन करे, संस्कृत में श्री 1008 शान्तिनाथ भगवान की स्तुति पढ़ें या हिंदी में भक्ति करें या जब चाहें पूजन-विधान करें, इन तीनों का अनोखा समावेश इस कृति में किया गया है।

(5) इस स्तुति-शतकम् एवं विधान में भक्ति, स्तुति, पूजा, अर्चना, तो है ही, जैसे अन्य स्तोत्र एवं पूजा विधानों में होती है, इसके अतिरिक्त इसमें भगवान शान्तिनाथ के जीवन की संपूर्ण कथा भी साथ साथ चलती है।

(6) स्तुति को पढ़ते हुए या विधान को करते हुए ऐसा अनुभव होता है जैसे शान्तिनाथ भगवान की पूरी चरित्रकथा या शान्तिनाथ पुराण ही पढ़ लिया हो, वह भी इतने कम समय में। भक्ति के साथ, स्वाध्याय जैसा आनन्द इस स्तुति एवं विधान में आता है।

(7) जैसे किसी कथा में बीच-बीच में भजन आ जाते हैं तो भक्तों में उत्साह बढ़ जाता है, वैसे ही इस स्तुति एवं विधान में शान्तिनाथ भगवान की कथा जैसे जैसे आगे बढ़ती है, बीच-बीच में भगवान की भक्ति, स्तुति के पद आते रहते हैं, जिससे भावों में विशुद्धि व आनन्द बढ़ता जाता है।

(8) इस स्तुति- शतकम् विधान में संस्कृत के सुन्दर ,अद्धितीय श्लोक हैं। साथ ही उनके हिन्दी पद एवं प्रत्येक श्लोक के ऊपर एक शीर्षक भी दिया गया है, जिससे पदों की विषय वस्तु स्पष्ट हो जाती है और उनको समझना सरल हो जाता है।

(9) आरम्भ के 5 पदों में रचयिता कवि, पूज्य मुनि श्री का समर्पण, भाव देख सभी के मस्तक प्रभु चरणों में झूक जाते हैं। पूज्य मुनि श्री जब स्वयं को शक्तिविहिन, मतिविहिन प्रभु चरणों का भ्रमर, कहकर सम्बोधितकरते हैं तो समझ आ जाता है, इस स्तुति-विधान में भक्ति व समर्पण की पराकाष्ठा देखने को मिलेगी और यह अनुमान पूर्णतया: सत्य साबित होता है।

(10) रचयिता पूज्य मुनि श्री स्वयं को ऐसा पक्षी बताते हैं, जिसको नहीं पता कि उसमें उड़ने की शक्ति है या नहीं, फिर भी वह गगन में उड़ता है। वे कहते हैं, पक्षी की तरह मुझे भी नहीं पता, मेरी सामर्थ्य प्रभु भक्ति करने की है या नहीं, फिर भी मैं भगवान की स्तुति करने के लिए तैयार हो गया हूं। सर्मपण भक्ति के ये प्रारंभिक पद ही भक्तों को श्रद्धा ,विश्वास व विनय भावों से भर देते हैं।

(11) शान्तिनाथ भगवान के 12 भवों का रोचक वर्णन इस स्तुति एवं विधान में मिलता है– किस प्रकार पूर्व भवों में आहार दान की महिमा से भोगभूमि, फिर देवगति, उसके बाद विदेह क्षेत्र में, तत्पश्चात देव गति, पुनः मनुष्य और देव गति के क्रम के साथ ऊपर ऊपर के देव विमानों में प्रभु का गमन हुआ और फिर जन्म से 2 भव पूर्व सोलहकारण भावना भाकर, प्रभु ने तीर्थकर नाम कर्म प्रकृति का बन्ध किया।

(12) प्रभु के 12 भवों के वर्णन के साथ ही, पांचों कल्याणक का इतना सजीव चित्रण, स्तुति एवं विधान के पदों में मिलता है कि एक चलचित्र सा ही मस्तिष्क में चलने लगता है।

(13) भगवान के बाल्यकाल, कुमारावस्था का वर्णन, भगवान के पुण्य की महिमा, 14 रत्न एवं 9 निधियों का वर्णन भी भक्तों को उत्साहित कर देता है। कौन से 7 अचेतन रत्न होते हैं और वे कहां प्रकट हुए? 7 चेतन रत्न शान्तिनाथ प्रभु को कैसे प्राप्त हुए। नौ निधियां कहां-कहां प्रकट हुईं? इसका गहन ज्ञान भी भक्तों को प्राप्त हो जाता है।

(14) भगवान को वैराग्य कैसे हो गया? इतने वैभव में उनकी मनोस्थिति अचानक किस तरह परिवर्तित हो गई? संसार,शरीर, और भोगों के बारे में भगवान अब क्या सोचने लगे ? इसका भी हृदयस्पर्शी चित्रण यहाँ प्राप्त होता है। [22,23]

(15) भगवान का दीक्षाभिषेक, तप कल्याणक, ज्ञान कल्याणक, समवशरण की महिमा, दिव्य ध्वनि, प्रभु का विहार, निर्वाण कल्याणक, इन सभी का ज्ञान से परिपूर्ण वर्णन इस स्तुति-विधान में मिलता है।

(16) इस स्तुति-विधान में जो अद्भुत सूक्ष्म ज्ञान प्राप्त होता है उसकी जितनी प्रशंसा की जाए कम है। तीन-चार घंटे के विधान में यदि भक्त एकाग्रता रखता है तो उसकी झोली ऐसे सूक्ष्म ज्ञान से भर जाती है जिसका उसको इससे पहले कोई अनुमान नहीं होता। यह विशेष ज्ञान भक्तों को सन्तोष, आत्मिक आनन्द और मानसिक शान्ति की अनुभूति देता है।

(17) बहुत से प्रश्न, सवाल, जिज्ञासाओं का भी समाधान इस स्तुति- शतकम् एवं विधान में स्वयंमेव प्राप्त हो जाता है।

(18) इस स्तुति एवं विधान की एक प्रमुख विशेषता यह भी है कि जितनी बार इसको पढ़ा जाता है, विधान को किया जाता है, आनन्द की निरन्तर वृद्धि होती जाती है, साथ ही उसमें रुचि और ज्यादा बढ़ने लगती है।

| e-ISSN: 2319-8753, p-ISSN: 2347-6710| www.ijirset.com | Impact Factor: 8.118|

||Volume 11, Issue 10, October 2022||

| DOI:10.15680/IJIRSET.2022.1110081|

(19) इस कृति में विधान की सभी प्रारम्भिक क्रियाएं भी शीर्षक के साथ, क्रम से इस तरह दी गई हैं कि जो पहली बार विधान कर रहे हैं, उन्हें भी सरलता से समझ में आ जाता है कि कब क्या करना है और किस विधि से करना है। कब क्या मंत्र, अर्घ्य पढ़ना है, शुद्धि करनी है, नियम लेने हैं, मंगल कलश कब, कैसे स्थापित करना है? आदि।

(20) इस कृति में श्री 1008 शान्तिनाथ भगवान का संस्कृत में पूजन और जयमाला भी दी गई है। संस्कृत में पूजा, जयमाला पढ़ना अलग ही विशिष्ट तरह का अनुभव भक्तों को देता है।

निष्कर्ष रूप में– इस स्तुति-शतकम् (पूजन व विधान) में इतना विलक्षण ज्ञान और विविधता हैं कि श्री शान्तिनाथ भगवान की स्तुति को पढ़कर या विधान करके, भक्तों का हृदय आत्मिक और मानसिक शान्ति का अनुभव करता है। भक्ति-स्तुति के साथ, ज्ञान-स्वाध्याय का नया प्रयोग, इस स्तुति एवं विधान में देखने को मिलता है। यह नया प्रयोग निश्चित ही भक्तों को उत्साह और आनन्द से भर देता है।

संस्कृत की धरोहर : संस्कृत-संसार के अनन्य व्यक्तित्व और उनका कृतित्व—3 : भर्तृहरि का वाक्यपदीयम् और उनके तीन शतक[21,22]

एते सत्पुरुषा: परार्थघटका: स्वार्थान्परित्यज्य ये सामान्यास्तु परार्थमुद्यमभृत: स्वार्थाविरोधे नये।
तेऽमी मानुषराक्षस: परहितं स्वार्थाय निघ्नन्ति ये, ये निघ्नन्ति निरर्थकं परहितं ते के न जानीमहे॥ (नीतिशतक-75)

[जो स्वार्थ का परित्यागकर परमार्थ में लगे रहते हैं, वे सत्पुरुष हैं. जो स्वार्थ का परित्याग किए बिना परमार्थ साधते हैं, वे सामान्य पुरुष हैं. जो अपनी स्वार्थ-सिद्धि के लिए दूसरों का अहित करते हैं, वे राक्षस-तुल्य हैं. और जो बिना कारण दूसरों का अहित करते हैं, उन्हें क्या कहा जाए, मैं नहीं जानता.]

भ्रूचातुर्यात्कुञ्चिताक्षा: कटाक्षा: स्निग्धा वाचो लज्जितान्ताञ्च हासा:।
लीलामन्दं प्रस्थितञ्च स्थितञ्च स्त्रीणामेतद् भूषणं चायुधञ्च॥ (शृंगारशतक-3)

[भौंहों को निपुणता से घुमाकार चंचल नेत्र-पुतलियों से डाली गई तिरछी नज़र, स्नेह-सिक्त बातें, सलज्ज भावाभिव्यक्ति के साथ अंत होनेवाली मुस्कान, लीलापूर्वक तथा मंद गति से ठिठक-ठिठककर चलना स्त्रियों के आभूषण भी हैं, हथियार भी.]

भोगो न भुक्ता वयमेव भुक्तास्तपो न तप्तं वयमेव तप्ता:।
कालो न यातो वयमेव यातास्तृष्णा न जीर्णा वयमेव जीर्णा:॥ (वैराग्यशतक-12)

[हमने विषयों को नहीं भोगा, विषयों ने हमें ही भोग डाला. हमने तप नहीं किया, तप ने ही हमें तपा डाला. समय नहीं बीता, हम ही बीत गए. हमारी तृष्णा क्षीण नहीं हुई, हम ही क्षीण हो गए.]

सर्वथा भिन्न तासीरवाले इन तीनों श्लोकों को पढ़कर, यह जाने बिना कि इनका रचयिता कौन है, यह अनुमान लगाना कठिन होगा कि तीनों का रचयिता एक ही व्यक्ति है. जी हाँ, सौ-सौ श्लोकों के तीनों शतक—नीति, शृंगार और वैराग्य—भर्तृहरि की ही देन हैं. लेकिन भर्तृहरि इन तीन शतकों के लिए प्रसिद्ध नहीं हैं, वे प्रसिद्ध हैं भाषाशास्त्र की (और व्याकरण की भी) अपनी अमर कृति 'वाक्यपदीयम्' के लिए, जिसने व्याकरण को व्याकरण-दर्शन में परिणत करनेवाले पतंजलि के महाभाष्य से एक कदम और आगे बढ़कर व्याकरण को शुद्ध दर्शन में बदल दिया. इतना तो निश्चित है कि भर्तृहरि ने जीवन को उसकी संपूर्ण विशदता और विविधता में भरपूर जिया था और उसके सभी रंग देखे थे , और उनकी विदग्ध, समावेशी दृष्टि ने उसे उसकी समग्रता में आत्मसात भी किया था. किंतु आज के उत्तरआधुनिक साहित्यालोचन को अपने उत्तरसंरचनावाद और विखंडन की अद्यतन अवधारणाओं के लिए वाक्यपदीयम् की स्थापनाओं की ओर लौटना और बार-बार उनसे जूझना पड़ेगा, इसका भान शायद भर्तृहरि को भी नहीं रहा होगा.[25,26]

काफ़ी विवाद के बाद भर्तृहरि का काल-निर्धारण पाँचवीं शताब्दी में हुआ है. इसका मुख्य आधार चीनी बौद्ध यात्री यित्सिंग (I-Tsing या Yi-Jing) का यात्रा-विवरण है. यित्सिंग जलमार्ग से सुमात्रा होते हुए भारत आए थे और 11वर्षों तक (676-687 ई.) नालंदा में रहकर अध्ययन किए थे. वे भर्तृहरि का उल्लेख भारतीय बौद्ध दार्शनिक दिङ्नाग के साथ करते हैं और भर्तृहरि को भी बौद्ध विद्वान / दार्शनिक बताते हैं, जो, भर्तृहरि की रचनाओं के अंत:साक्ष्य के आलोक में सर्वथा असत्य साबित होता है. इतना अवश्य है कि भर्तृहरि वाक्यपदीयम् में वसुरात को अपना गुरु बताते हैं और एक विद्वान टी. आर. वी. मूर्ति के अनुसार दिङ्नाग (अनुमानत: 480-540 ई.) भी वसुरात के शिष्य थे; तो भर्तृहरि और दिङ्नाग गुरुभाई रहे होंगे. तब तक बौद्ध दर्शन, विशेषकर उसकी महायान शाखा, भारतीय परंपरा के वटवृक्ष में समाकर उसका अभिन्न अंग बन चुकी थी और इस तरह की मिली-जुली गुरु-परंपरा सामान्य बात हो गई थी. यित्सिंग के विवरणों के प्रकाश में आने से पहले भर्तृहरि को सातवीं शताब्दी में रखा गया था और उसके बाद ही उन्हें पाँचवीं शताब्दी में पीछे खिसकाया गया–इस आधार पर कि यित्सिंग के संज्ञान में आने के लिए यह आवश्यक है कि उनकी भारत-यात्रा के समय तक भर्तृहरि के कार्य को प्रसिद्धि अर्जित हो गई रही हो. इस आधार पर, और टी. आर. वी. मूर्ति की इस स्थापना के आधार पर कि भर्तृहरि दिङ्नाग के समकालीन गुरुभाई थे, भर्तृहरि का अनुमानित काल ई.450 से. 510 निर्धारित होता है. प्राय: सभी सम्बंधित साक्ष्य भर्तृहरि के जीवन के पूर्वार्द्ध को राजकर्म से जुड़ा होने तथा उनके उज्जयिनी का निवासी होने की ओर संकेत करते हैं. उधर उज्जयिनी में पहली शताब्दी में भर्तृहरि नाम के एक राजा का होना ऐतिहासिक तथ्य है. इस आधार पर कुछ भारतीय साक्ष्य भर्तृहरि को पहली

| e-ISSN: 2319-8753, p-ISSN: 2347-6710| www.ijirset.com | Impact Factor: 8.118|

||Volume 11, Issue 10, October 2022||

| DOI:10.15680/IJIRSET.2022.1110081|

शताब्दी में रखते हैं. यदि टी. आर. वी. मूर्ति की दिङ्नाग और भर्तृहरि की समकालीनता के प्रमेय को अकाट्य न माना जाए तो इस परंपरा को भी ख़ारिज करना कठिन है.

मेरे बचपन तक 'जोगी' कही जानेवाले एक ख़ास जाति के लोग सारंगी बजाते और 'राजा भरथरी' तथा 'गोपीचंदा' के गीत गाते हुए, भिक्षाटन के लिए अवध के गाँवों में घूमा करते थे. उनका साफा और विशेष लबादेनुमा परिधान गेरुए रंग का होता था और भिक्षा में मिले अनाज के लिए कंधे से लटकती उसी रंग की एक लम्बी गुदड़ी होती थी. आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने अपनी पुस्तक 'कबीर' में इन जोगियों को गोरखनाथ के नाथ-सम्प्रदाय का अनुयायी बताया है और भर्तृहरि तथा गोपीचंद को गोरखनाथ के शिष्य जालंधरनाथ का शिष्य बताया है. इन 'राजा भरथरी' के साथ बहुत सारी किंवदंतियाँ जुड़ी हुई हैं. योगियों की नाथ-परम्परा में भर्तृहरि के नाम से एक श्लोक उद्धृत किया जाता है और उसे उनके जीवन की उस निर्णायक घटना से जोड़ा जाता है, जिसने उन्हें वैराग्य की ओर उन्मुख किया :

यां चिन्तयामि सततं मयि सा विरक्ता
सोप्यन्यमिच्छतिजनं स जनोऽन्यसक्त:।
अस्मत्कृते च परितष्यति काचिदन्या
धिक् तां च तं च मदनं च इमां च मां च॥

[जिसका मैं निरंतर चिंतन करता हूँ, वह मुझसे विरक्त है. वह तो किसी अन्य जन की इच्छा रखती है, और वह जन किसी अन्य में आसक्त है. इधर मेरे लिए कोई दूसरी तड़प रही है. उस स्त्री को, उस पुरुष को, कामदेव को, इस स्त्री को और मुझको धिक्कार है.][24]

इसके पीछे कथा यह बताई जाती है कि राजा भर्तृहरि अपनी रानी (पिंगला) से बहुत प्रेम करते थे. किसी सन्यासी ने राजा पर प्रसन्न होकर उन्हें एक फल यह कहकर दिया कि इसके खाने से अक्षत-यौवन प्राप्त होगा. राजा ने उसे ख़ुद न खाकर आपनी रानी को दे दिया. रानी किसी मंत्री (या राज्याधिकारी) पर आसक्त थी. उसने वह फल उस मंत्री को दे दिया. वह मंत्री किसी गणिका पर आसक्त था और उसने वह फल उस गणिका को दे दिया. वह गणिका राजा पर जान छिड़कती थी, तो उसने वह फल लाकर राजा को अर्पित कर दिया. अपने द्वारा रानी को दिए गए उस फल को गणिका से वापस पाकर चकित हुए राजा ने जाँच करवाई, तो पूरा प्रकरण सामने आया. तत्काल उन्हें वैराग्य हो गया. यही श्लोक कहकर उन्होंने राजपाट छोड़ दिया और योगी बन गए. कहते हैं, वैराग्य शतक उनके योगी बनने के बाद की रचना है, जब कि अन्य दो शतक पहले की रचनाएँ हैं. यह कथा प्रचलित तो बहुत है किंतु इसकी प्रामाणिकता की पुष्टि में मुझे कुछ नहीं मिला. वैसे भी इसमें अक्षत-यौवन देनेवाले फल की अलौकिकता विवेकसम्मत नहीं है. जीवन की शाश्वत विडंबना को प्रतिबिम्बित करता यह श्लोक ज़रूर बहुत उम्दा है और सच्चे प्रेम में अंतर्निहित उत्सर्ग की उदात्त भावना का उद्घाटन बहुत युक्तिपूर्ण ढंग से करता है.

भिक्षाटन करनेवाले जोगियों के गीतों में जो 'राजा भरथरी' आते हैं उनके साथ ऐसी कई किंवदन्तियाँ जुड़ी हुई हैं और यह निश्चित करना असंभव है कि उनमें सत्य का अंश कितना है, और है भी या नहीं. दरअसल भर्तृहरि के नाम के साथ तीन सर्वथा भिन्न प्रकृति के शतकों के जुड़ जाने से उनके जीवन में जिस नाटकीय तत्व का समावेश होता है, उसने लोगों के उर्वर दिमाग़ को बहुत सामग्री मुहैया करा दी होगी.

हजारी प्रसाद द्विवेदी ने अपनी उपरोक्त पुस्तक में मुख्यत: अनुमान के अधार पर गोरखनाथ का समय 11वीं-12वीं शताब्दी तय किया है. ऐसे में उनके शिष्य जालंधरनाथ के शिष्य भर्तृहरि और बाद में चले जाते हैं, जब कि ऊपर वर्णित इत्सिंग के साक्ष्य के आधार पर विचाराधीन भर्तृहरि का समय छठी शताब्दी के बाद नहीं हो सकता. अस्तु, यदि जोगियोंवाले कोई भर्तृहरि थे भी, तो वे वाक्यपदीयम् और उपरोक्त तीन शतकों के रचयिता भर्तृहरि नहीं हो सकते. इस अतिप्राचीन और अनेक धाराओं-प्रतिधाराओं वाले देश में निश्चयपूर्वक कुछ भी कह पाना कितना कठिन है !

| e-ISSN: 2319-8753, p-ISSN: 2347-6710| www.ijirset.com | Impact Factor: 8.118|

||Volume 11, Issue 10, October 2022||

| DOI:10.15680/IJIRSET.2022.1110081|

भर्तृहरि के नाम से निम्नलिखित रचानाएँ मिलती है:

एक—वाक्यपदीयम् (पद्यबद्ध, तीन कांडों में)

दो–वाक्यपदीयवृत्ति: (वाक्यपदीयम् के पहले दो कांडों पर स्वयं भ्रर्तृहरि का भाष्य)

तीन—महाभाष्यदीपिका (पाणिनीय अष्टाध्यायी पर पतंजलि के महाभाष्य का उपभाष्य—इस अपूर्ण ग्रंथ के 6 उपलब्ध पुलिंदों को भंडारकर रिसर्च इंस्टीट्यूट, पूना ने कई खंडों में संपादित किया है)

चार—शतकत्रय : नीतिशतक, शृंगारशतक और वैराग्यशतक {शतकों की उपलब्ध पांडुलिपियों की सामग्री में बहुत भेद है. डी.डी. कौशाम्बी ने (300 की जगह) कुल 200 ऐसे पद्यों को संकलित किया है जो सभी पांडुलिपियों में सामान्य हैं }.

पाँच—भट्टिकाव्य (संदेहास्पद). एक मत के अनुसार भट्टिकाव्य के प्रणेता का नाम भट्टि वस्तुत: भर्तृ का अपभ्रंश है, जिनका पूरा नाम भर्तृहरि था. वैसे तो भट्टिकाव्य रावणवध पर आधारित एक महाकाव्य है किंतु इसकी रचना पाणिनि के शुष्क व्याकरण ग्रंथ अष्टाध्यायी के अध्ययन को सरस बनाने के लिए की गई थी. इस तरह यह कृति उच्च कोटि की काव्य-कला और व्याकरण-ज्ञान का अपूर्व संगम है, जो इसमें निहित दिमाग़ी कसरत के चलते केवल सुधी जनों के लिए गम्य है. संभवत: इसी कारण इसे बहुमुखी प्रतिभा-सम्पन्न भर्तृहरि के नाम से जोड़ दिया गया होगा.[25]

वाक्यपदीयम्

तीन कांडों में विभक्त वाक्यपदीयम् एक अप्रतिम रचना है, जो व्याकरण (या भाषाशास्त्र) और दर्शन को एकात्म कर देती है. यहाँ दर्शन की तीनों शाखाएँ—ज्ञानमीमांसा (epistemology), सत्तामीमांसा (ontology) एवं तत्वमीमांसा (metaphysics) भाषाशास्त्र की शाखाएँ बन जाती हैं. वाणी और अर्थ के संयोग के बिना कोई ज्ञान संभव नहीं है. जिस तरह ध्वनि अविनाशी है, उसी तरह उसमें निहित अर्थ भी; भर्तृहरि शब्द को अंतिम सत्य से जोड़ते हुए शब्दब्रह्म की अवधारणा तक पहुँच जाते हैं. पहले कांड का शीर्षक ही ब्रह्मकांड है, जिसकी 157 कारिकाएँ (व्याख्यात्मक पद्य) अक्षर या ध्वनि-सत्ता की प्रकृति और व्याप्ति के सामान्य विवेचन के रूप में वर्ण्य विषय की प्रस्तावना प्रस्तुत करती हैं. दूसरा कांड वाक्यकांड है जिसमें 493 कारिकाएँ हैं; इनमें वाक्य अपने घटक शब्दों के योग से परे, एक विशिष्ट अर्थ देनेवाली स्वतंत्र इकाई बन जाता है. तीसरा पदकांड है, जिसमें 450 से अधिक कारिकाएँ हैं, जो घटक वर्णों से स्वतंत्र भावार्थ को भेदने और उद्भासित करनेवाली शब्द-सत्ता का विवेचन करती हैं. वाक्यपदीयम् की 635 चुनी हुई कारिकाओं के अँग्रेजी अनुवाद के साथ 1880 में इस ग्रंथ का पहला संपादित संस्करण प्रकाशित हुआ. तब से Ferdinand de Saussure, Leonard Bloomfield और Roman Jakobson जैसे अनेक पाश्चात्य विद्वानों और भाषाशास्त्रियों द्वारा भर्तृहरि के वाक्यपदीयम् पर निरंतर महत्वपूर्ण काम होता रहा है. ब्लूमफ़ील्ड ने अपने संरचनावादी प्रसिद्ध प्रमेय के लिए बार-बार भर्तृहरि का आश्रय लिया है.

भर्तृहरि ने मीमांसा और न्याय दर्शन के उस प्रत्यक्ष ज्ञान की सीमा इंगित की जिसमें, विषयों के साथ ज्ञानेंद्रियों के प्रत्यक्ष संपर्क से प्राप्त होने के कारण, वस्तु की 'अवधारणा' की ज़रूरत ही नहीं मानी गई थी. भर्तृहरि ने बताया कि शब्द या भाषा के बिना ऐसा प्रत्यक्ष ज्ञान तक संभव नहीं है. हमारा प्रत्येक अनुभव, प्रत्येक अनुभूति, मस्तिष्क में उठनेवाला प्रत्येक विचार या भाव बस धुआँ-धुआँ-सा होता है और शब्दों के अभाव में न वह रूपाकार ग्रहण कर सकता है, न अवधारणा बन सकता है, न उसे स्मृति में सँजोया जा सकता है, न संप्रेषित किया जा सकता है; उसके आधार पर चिंतन की प्रक्रिया से किसी ठोस निष्कर्ष पर पहुँचना तो दूर की बात है. वस्तुओं में भेद या भिन्नता की अनुभूति और उस भिन्नता की स्मृति शब्दों के सहारे के बिना संभव नहीं है. हम प्रत्यक्ष अनुभव के बावजूद शब्दों का सहारा लिए बिना बेला, हरसिंगार, चम्पा, चमेली और जुही के फूलों की गंध अलग नहीं कर सकते, न मीठे, खट्टे, तीखे, कसैले और नमकीन स्वाद का अंतर याद रख सकते हैं. हमारी ज्ञानेंद्रियाँ सूक्ष्म हैं–आँख, कान, नाक, जिह्वा, त्वचा ज्ञानेंद्रियाँ नहीं हैं; देखने, सुनने, सूँघने, स्वाद लेने और स्पर्श महसूस करने की क्षमता ज्ञानेंद्रियाँ हैं, जो गम्य नहीं हैं. इन सूक्ष्म ज्ञानेंद्रियों से स्थूल विषयों का ज्ञान होता है. ज्ञानेंद्रियों की तरह ही यह ज्ञान भी सूक्ष्म होता है, क्योंकि किसी विषय का प्रत्यक्ष ज्ञान भी वह विषय नहीं होता, उसकी अवधारणा होती है, जो शब्द से इंगित होती है पर सूक्ष्म होती है. यही भर्तृहरि के भाषा-दर्शन की ज्ञानमीमांसा (epistemology) है. जगत में

| e-ISSN: 2319-8753, p-ISSN: 2347-6710| www.ijirset.com | Impact Factor: 8.118|

||Volume 11, Issue 10, October 2022||

| DOI:10.15680/IJIRSET.2022.1110081|

पदार्थों के नानात्व के समानांतर शब्दों का नानात्व है. वेदांत जगत के इस नानात्व के पीछे एक आधिभौतिक तत्व की परिकल्पना करता है, जिसे ब्रह्म की संज्ञा दी गई है. भाषा में वही अक्षर ब्रह्म या शब्द ब्रह्म है, यही भर्तृहरि के भाषा-दर्शन की सत्तामीमांसा (ontology) है, जो शब्द-साधन के बिना अर्थशून्य है. इसी तरह वेदांत के अद्वैत की तरह ही भर्तृहरि का शब्दाद्वैत है जो आधिभौतिक एकत्व के साथ युग्म बनाते हुए भाषा-दर्शन की तत्वमीमांसा (metaphysics) प्रस्तुत करता है. जगत सृष्टि और प्रलय के चक्र के अधीन है जब कि अक्षर ब्रह्म अविनाशी, निराकार, अपरिवर्तनशील, अनादि और अनंत है और सृष्टि के लय होने पर भी बीज रूप में विद्यमान रहता है. संस्कृत में वर्ण की अक्षर संज्ञा इसी का संकेत है. भाषा में जो शब्द और अर्थ का अन्योन्याश्रय है वह शाश्वत है और अस्तित्व (being) का ही पर्याय है.[24,25]

वाक्यपदीयम् का स्फोटवाद

पाणिनि ने अष्टाध्यायी में व्याकरण के पहले के आचार्यों के साथ एक स्फोटायन का उल्लेख भर किया था. इस उल्लेख के अतिरिक्त उनके बारे में और कुछ नहीं मिलता. पतंजलि ने महाभाष्य में स्फोट का प्रयोग भाषिक तत्व के रूप में करते हुए बताया कि वर्णों की ध्वनियाँ व्यक्ति-सापेक्ष ह्रस्व, दीर्घ, प्रकृत और विकृत हो सकती हैं, किंतु अर्थ-संप्रेषण के लिए यह भेद निर्णायक नहीं है. शब्द सुनने पर श्रोता में अर्थ का स्फोट होता है (वह फूट पड़ता है), जो उसके स्मृति-संसार में पड़े संस्कारों के चलते संभव होता है. स्फोटवाद की विस्तृत विवेचना का श्रेय भर्तृहरि को जाता है. भर्तृहरि में स्फोट केवल श्रोता तक सीमित नहीं है. इसके तीन चरण हैं—

एक—वक्ता (या लेखक) द्वारा अवधारण (conceptualization)

दो—बोलने (या लिखने) की प्रक्रिया

तीन—श्रोता (या पाठक) द्वारा अवबोधन

इन तीनों चरणों में स्फोट की भूमिका होती है.

वस्तुत: स्फोट व्यक्ति-विशेष की भाषिक क्षमता से जुड़ी हुई अवधारणा है, जो उसकी चेतना का उद्घाटन करती है. ध्वनि एक आकाशीय और ऐहिक तत्व है और हर वक्ता द्वारा उच्चरित ध्वनि के ऐहिक आयाम में भेद होता है. पर अर्थ-बोध एक अमूर्त सत्ता है. वह व्यक्ति निरपेक्ष है. या तो अर्थ-बोध होता है, या नहीं होता. यहाँ अर्थ-बोध से तात्पर्य सही अर्थ-बोध से है और हर शब्द का सही अर्थ स्थिर और अपरिवर्तनीय है. वह अमूर्त है. वक्ता को अवधारण की अवस्था में ही उस अर्थ का स्फुरण होता है. अवधारणा-पूर्व चिंतन की क्रिया तक में एक ख़ास तरह का उद्वेलन होता है जो स्फोट का प्रारम्भिक रूप है ध्वनि तो मात्र कंपन है, जो उसे संप्रेषित करती है. जब वक्ता और स्रोता की मानसिक स्थिति एक ही धरातल पर होती है, तो वक्ता की ध्वनि श्रोता में भी उसी अर्थ का स्फोट करती है जो अवधारण के समय हुए स्फोट से उसे प्राप्त हुआ था. अवधारण या अवबोधन के लिए शब्द की व्युत्पत्ति, संधि-विच्छेद या व्याख्या नहीं करनी पड़ती, वह एक सहज और स्वायत्त प्रक्रिया है. जब कोई परिकल्पना जटिल होती है तो वक्ता उसके रेशे-रेशे करके उन शब्दों में समझाता है जिनका अवधारण और अवबोधन एक ही धरातल पर हो सके. स्फोट हमेशा पूर्ण और अविभाज्य होता है. जब कि नाद या ध्वनि विभाज्य और अपूर्ण होती है और उसके घटकों का क्रम बदल सकता है.

भर्तृहरि के स्फोट की व्याप्ति शब्द तक सीमित नहीं है, उसके तीन अलग-अलग आयाम हैं—वर्ण स्फोट, पद स्फोट और वाक्य स्फोट. तीनों में स्फोट अर्थ का कारणभूत मूल है; अर्थ, जो ध्वनि और संरचना के पीछे अभिप्रेत होता है. स्फोट के लिए अवयवों या घटकों की इयत्ता महत्वपूर्ण नहीं होती, बल्कि पूर्ण इकाई की इयत्ता प्रभावी बन जाती है. भर्तृहरि का स्फोट सिद्धांत अंतत: उनके शब्दाद्वैत के प्रमेय को ही पुष्ट करता है.

| e-ISSN: 2319-8753, p-ISSN: 2347-6710| www.ijirset.com | Impact Factor: 8.118|

||Volume 11, Issue 10, October 2022||

| DOI:10.15680/IJIRSET.2022.1110081|

निष्कर्ष

शतकत्रय

ऊपर तीनों शतकों के एक-एक उदाहरण दिए गए हैं. उनकी विषय-वस्तु भर्तिहरि के जीवनानुभव के विस्तार और गहराई को प्रतिबिम्ब करती है. चूँकि हर श्लोक विषय-वस्तु की दृष्टि से अपने में स्वतंत्र है, उनमें किसी सामान्य धारा की खोज निरर्थक होगी. इनमें नीतिशतक सबसे अधिक लोकप्रिय है. उसके कई श्लोक लोगों की जबान पर चढ़े हुए हैं, जिनका सुभाषित की तरह दैनंदिन जीवन में प्राय: प्रयोग होता है, कभी-कभी बिना यह जाने कि यह भर्तृहरि की रचना है. कई श्लोकों का शिल्प भी बेहद मनोहारी है. दो उदाहरण—

रे रे चातक सावधान मनसा मित्र क्षणं श्रूयता—
मम्भोदा बहवो हि संति गगने नहि सर्वे एताद्दशा:।
केचिद् वृष्टिभिराद्रयन्ति वसुधां गर्जन्ति केचिद् वृथा
यं यं पश्यसि तस्य तस्य पुरुतो मा ब्रूहि दीनं वच:॥[26]

[रे पपीहे ! थोड़ी देर सावधान मन से मेरी बात सुन. आकाश में बहुत-से बादल हैं. सभी एक-जैसे नहीं हैं. कुछ तो वर्षा से धरती को आर्द्र करते हैं, किंतु कुछ व्यर्थ ही गरजते हैं. जिस-जिस को देखो, उस-उस के सामने दीन वचन मत बोलो.]

आरम्भगुर्वी क्षयिणी क्रमेण लघ्वीपुरा वृद्धिमती च पश्चात्।
दिनस्य पूर्वार्द्धपरार्द्धभिन्ना छायेव मैत्री खलसज्जनानाम्॥

[दुष्ट की दुष्ट से और सज्जन की सज्जन से मैत्री क्रमश: दिन के पूर्वार्द्ध और परार्द्ध की छाया की भाँति होती है. पूर्वार्द्ध की छाया शुरू में बड़ी होती है और धीरे-धीरे घटती जाती है, जब कि परार्द्ध की छाया शुरू में छोटी होती है पर धीरे-धीरे बढ़ती जाती है.]

शृंगारशतक के कई श्लोक घोर शृंगारिक होते हुए भी प्रत्येक में सूक्ष्म सौंदर्य-बोध की कलात्मक अभिव्यक्ति है. उस समय की संस्कृत-काव्य परंपरा के अनुसार अधिकांश श्लोकों में वक्ष और नितम्ब-जैसे शृंगारिक नारी-अंगों और काम-कला का खुलकर वर्णन है, जो आजके गंभीर लेखन में प्राय: नहीं होता. संस्कृत में शृंगार का तात्पर्य रुग्ण रोमान से नहीं होता, वियोग-संयोग दोनों में एक स्वस्थ, उन्मुक्त, वर्जनाहीन और ग्रंथिरहित जीवन का सौंदर्य ही छलकता है.

वैराग्यशतक भोग, यौवन, ऐश्वर्य और काम-लिप्सा की अमिट प्यास की नि:सारता का शोकगान है, जो वैराग्य के स्थायीभाव को बारंबार पुष्ट करता है.[26]

संदर्भ

1) बलदेव उपाध्याय: संस्कृत साहित्य का इतिहास, काशी, पंचम सं. 1958;
2) दासगुप्त तथा दे: हिस्ट्री ऑव क्लैसिकल लिटरेचर, कलकता, 1935।
3) Mascaró, Juan (2003). The Bhagavad Gita. Penguin. पपृ॰ 13 , ff. आई॰ऍस॰बी॰ऍन॰ 978-0-14-044918-1. The Bhagawad Gita, an intensely spiritual work, that forms one of the cornerstones of the Hindu faith, and is also one of the masterpieces of Sanskrit poetry. (from the backcover)
4) ↑ Besant, Annie (trans) (1922). The Bhagavad-gita; or, The Lord's Song, with text in Devanagari, and English translation. Madras: G. E. Natesan & Co. प्रवृत्ते शस्त्रसम्पाते धनुरुद्यम्य पाण्डवः ॥ २० ॥ Then, beholding the sons of Dhritarâshtra standing arrayed, and flight of missiles about to begin, ... the son of Pându, took up his bow,(20)

| e-ISSN: 2319-8753, p-ISSN: 2347-6710| www.ijirset.com | Impact Factor: 8.118|

||Volume 11, Issue 10, October 2022||

| DOI:10.15680/IJIRSET.2022.1110081|

हृषीकेशं तदा वाक्यमिदमाह महीपते । अर्जुन उवाच । ...॥ २१ ॥
And spake this word to Hrishîkesha, O Lord of Earth: Arjuna said: ...

5) ↑ Radhakrishnan, S. (1948). The Bhagavadgītā: With an introductory essay, Sanskrit text, English translation, and notes. London, UK: George Allen and Unwin Ltd. पृ° 86. ... pravyite Sastrasampate dhanur udyamya pandavah (20)
Then Arjuna, ... looked at the sons of Dhrtarastra drawn up in battle order; and as the flight of missiles (almost) started, he took up his bow.
hystkesam tada vakyam idam aha mahipate ... (21)
And, O Lord of earth, he spoke this word to Hrsikesha (Krsna): ...
6) ↑ "Comparative speaker's strength of scheduled languages -1971, 1981, 1991 and 2001". Census of India, 2001. Office of the Registrar and Census Commissioner, भारत. अभिगमन तिथि 31 दिसम्बर 2009.
7) ↑ "'The Old Vedic language had its origin outside the subcontinent. But not Sanskrit.'".
8) ↑ Sagarika Dutt (2006). India in a Globalized World. Manchester University Press. p. 36. ISBN 978-1-84779-607-3.
9) ↑ Gabriel J. Gomes (2012). Discovering World Religions. iUniverse. p. 54. ISBN 978-1-4697-1037-2.
10) ↑ अमेरिकी पत्रिका (साइंटिफिक अमेरिकन) का दावा- संस्कृत मंत्रों के उच्चारण से बढ़ती है याददाश्त (जनवरी २०१८)
11) ↑ Is Sanskrit the most suitable language for natural language processing?
12) ↑ Guide to OCR for Indic Scripts: Document Recognition and Retrieval (edited by Venu Govindaraju, Srirangaraj Ranga Setlur)
13) ↑ We should thank Sanskrit for the 21st century
14) ↑ Tracing the Trajectory of Linguistic changes in Tamil: Mining the corpus of Tamil Texts
15) ↑ 'Sanskrit has had profound influence on world languages'
16) ↑ Sanskrit's Influence on Khmer
17) ↑ Sanskrit had an influence on Chinese language
18) ↑ How Sanskrit Language Is Associated With The Tibet and Xinjiang?
19) ↑ Jan Gonda (1975), Vedic literature (Saṃhitās and Brāhmaṇas), Otto Harrassowitz Verlag, ISBN 3-447-01603-5
20) ↑ Teun Goudriaan, Hindu Tantric and Śākta Literature, Otto Harrassowitz Verlag, ISBN 3-447-02091-1
21) ↑ Dhanesh Jain & George Cardona 2007.
22) ↑ Hartmut Scharfe, A history of Indian literature. Vol. 5, Otto Harrassowitz Verlag, ISBN 3-447-01722-8
23) ↑ Keith 1996.
24) ↑ Duncan, J.; Derrett, M. (1978). Gonda, Jan (संपा°). Dharmasastra and Juridical Literature: A history of Indian literature. 4. Otto Harrassowitz Verlag. आई°ऍस°बी°ऍन° 3-447-01519-5.
25) ↑ Keith 1996, ch 12.
26) ↑ Olivelle, Patrick (31 January 2013). King, Governance, and Law in Ancient India. Oxford University Press. आई°ऍस°बी°ऍन° 978-0-19-989182-5.

INNO SPACE
SJIF Scientific Journal Impact Factor
Impact Factor: 8.118

doi crossref

INTERNATIONAL STANDARD SERIAL NUMBER INDIA

निस्केयर
NISCAIR

INTERNATIONAL JOURNAL OF INNOVATIVE RESEARCH

IN SCIENCE | ENGINEERING | TECHNOLOGY

9940 572 462 6381 907 438 ijirset@gmail.com

Scan to save the contact details